महाभारत युद्ध कब हुआ

एवं

अन्य रचनाएं

विरजानन्द दैवकरणि

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

प्रथमावृत्ति, १९९५

मूल्य : ५)०० रु.

महाभारत युद्ध कब हुआ ?

पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली द्वारा शिक्षित इतिहासज्ञ यह मानते हैं कि प्राचीन भारतीय लोगों द्वारा स्वीकृत मन्वन्तर और सत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग आदि काल्पनिक हैं। क्योंकि इन युगों का लाखों वर्ष लम्बा कालमान पाश्चात्यों के गले से नीचे नहीं उतरता। जो लोग इस सृष्टि को ही कुछ हजार वर्ष पुरानी मानते हों, वे लाखों वर्षों की अनेक चतुर्युगियां अब तक बीती हुई मानने में अपने मान्य सिद्धान्त की हानि समझते हैं, उनकी सभी मान्यतायें ध्वस्त होने लगती हैं अतः युगों को काल्पनिक कहकर सहज ही अपना पिण्ड छुड़ा लेते हैं।

महाराजा हरिश्चन्द्र सतयुग में हुये, श्री रामचन्द्रजी त्रेतायुग में थे तथा कौरव-पाण्डव युद्ध द्वापर युग में हुआ, ऐसी बातें पाश्चात्यानुमोदित इतिहास ग्रन्थों में नहीं मिलती। पुनः अनेक मन्वन्तरों को सत्य मानकर मानव सभ्यता को एक अरब ·छियानवे करोड़ वर्ष पुराना मानने की वैदिक परम्परा की तो ये लोग कभी कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी दुराग्रहपूर्ण मान्यतायें इतिहास का सत्य-स्वरूप सदा छुपाये रहती हैं। यही कारण है कि कलिसंवत् आदि के प्राचीन साहित्यिक प्रमाण होते हुये भी दृष्टि से ओझल कर दिये जाते हैं। यदि युगों की कालगणना को ये लोग सत्य मान लें तो श्री रामचन्द्रजी का समय ही कम से कम आठ लाख उनहत्तर हजार (८६९०००) वर्ष पुराना मानना पड़ेगा। क्योंकि यदि श्री राम को इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की इस प्रचलित अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के त्रेतायुग के अन्त में भी मानें, वर्तमान कलि-युग से पूर्व आठ लाख चौसठ सहस्र वर्षों का एक द्वापर युग बीत चुका है तथा इस वर्तमान कलियुग के ५०९३ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान काल के इतिहासकार कालमान में ईसा से बाहर नहीं जा सकते। किसी भी समय का

वर्णन वे ईसापूर्व अथवा ईसापश्चात् ही लिखकर करते हैं। क्या ईसा के जन्म से पूर्व भारत में कालबोधक कोई संज्ञा थी ही नहीं ? यदि थी तो क्यों नहीं उसका उपयोग किया जाता। क्या इस प्रकार कहना उचित प्रतीत होगा कि महाराणा प्रताप गांधी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में पैदा हुये अथवा भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध १२ गांधीपूर्व में हुआ था। जैसे ३२६ ईसापूर्व में सिकन्दर भारत आया था। इस प्रकार का कथन ज्ञान पर प्रतिबन्ध लगाना तथा हठधर्मिता और संकुचितपने का प्रतीक है। यदि ईसापूर्व के राजा लोग किसी संवत् आदि का प्रयोग करते थे तो उनका वर्णन करते समय उसी संवत् का प्रयोग करना उचित है, उनका समय बताने के लिये ईसापूर्व आदि शब्दों का प्रयोग करना इतिहासज्ञान से शून्यता सिद्ध करता है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में ईसा से भी अरबों करोड़ों, लाखों, हजारों वर्षपूर्व संवतों का प्रचलन था। ज्ञात संवतों में ही सृष्टिसंवत्, सप्तर्षिसंवत्, युधिष्ठिरसंवत्, कलिसंवत्, शकसंवत्, कृतसंवत् (विक्रमसंवत्), हर्षसंवत् (शूद्रकसंवत्) आदि के प्रमाण मिलते हैं। चीन आदि अनेक देशों में भी लाखों वर्ष पुराने संवत् मिलते हैं। इन सबको काल्पनिक कहकर इनकी उपेक्षा कर देना न्याय-संगत नहीं है। सभी स्थानों पर पुरातत्त्व के प्रमाण नहीं मिला करते, किन्तु शब्द (ऐतिह्य) प्रमाण का भी अपना एक विशिष्ट स्थान होता है, वह उपेक्षणीय न होकर ग्राह्य होता है।

पाश्चात्य शिक्षापद्धति से शिक्षित इतिहास-पुरातत्त्व वेत्ताओं द्वारा समय-समय पर ऐसी आपत्तियाँ उठाई जाती रही हैं कि क्या रामायण महाभारत युद्ध वास्तव में ही हुये थे, अथवा ये कपोल कल्पनायें हैं। यदि ये युद्ध हुये थे तो कब हुये थे। उन्हें आज कितने वर्ष व्यतीत हो गये, उनके क्या-क्या प्रमाण हैं, इत्यादि। यहाँ महाभारत युद्ध के सही समय पर विचार किया जाता है।

महाभारत नामक ग्रन्थ में यद्यपि बहुत-सा भाग प्रक्षिप्त है, पुनरपि उसमें वर्णित गणराज्य, ग्राम, नगर, जनपद, देश, नदी, पर्वत आदि

की विद्यमानता किसी न किसी रूप में अभी तक बहुत स्थलों पर देखी जा सकती है। इसकी शिक्षाप्रद गाथायें भारतीय जनमानस में गहराई तक बैठी हुई हैं। इनके ऐतिहासिक, साहित्यिक, ज्योतिषीय तथा बहुत सीमा तक पुरातात्त्विक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि महाभारत युद्ध अवश्य हुआ था और वह द्वापर युग के अन्तिम वर्षों में ही हुआ था उसे आज विक्रम संवत् २०४९ (ईसवी सन् १९९३) तक ५१३० वर्ष हो चुके हैं।

महाभारत आदिपर्व में लिखा है—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
स्यमन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥

अर्थात् द्वापर और कलियुग के मध्य = सन्धिकाल में स्यमन्तपञ्चक = कुरुक्षेत्र नामक स्थल में कौरव और पाण्डवों की सेना में युद्ध हुआ था। अन्यत्र भी इसी की पुष्टि में प्रमाण मिलते हैं—

एतत् कलियुगं नाम ह्यचिरात् यत् प्रवर्त्तते।

कलि नामक युग शीघ्र आने वाला है अर्थात् कलियुग प्रारम्भ होने में कुछ ही वर्ष शेष रह गये हैं।

प्राप्तं कलियुगं विद्धि॥

कलियुग को आया हुवा ही जानो।

जैसे १५-२० वर्ष पहले से ही ईसा की २१वीं शताब्दी आने वाली है इसकी चर्चा समाचार पत्रों में आने लग गई थी। जब एक शती के लिये भी १५-२० वर्ष की गणना गौण अर्थात् अल्प ही मानी जा रही है तो लाखों वर्षों के द्वापर की समाप्ति के ३५-४० वर्ष शेष रहने पर यह कहना कि "कलियुग शीघ्र ही लगने वाला है" कोई बहुत आश्चर्यजनक बात नहीं मानी जानी चाहिये।

१. अस्तु! ज्योतिष की गणना के आधार पर कलियुग को प्रारम्भ हुये ५०९३ वर्ष बीत गये हैं। भारतीय प्राचीन राजवंशावलियां

की विद्यमानता किसी न किसी रूप में अभी तक बहुत स्थलों पर देखी जा सकती है। इसकी शिक्षाप्रद गाथायें भारतीय जनमानस में गहराई तक बैठी हुई हैं। इनके ऐतिहासिक, साहित्यिक, ज्योतिषीय तथा बहुत सीमा तक पुरातात्त्विक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि महाभारत युद्ध अवश्य हुआ था और वह द्वापर युग के अन्तिम वर्षों में ही हुआ था उसे आज विक्रम संवत् २०४९ (ईसवी सन् १९९३) तक ५१३० वर्ष हो चुके हैं।

महाभारत आदिपर्व में लिखा है—

अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
स्यमन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः॥

अर्थात् द्वापर और कलियुग के मध्य = सन्धिकाल में स्यमन्तपञ्चक = कुरुक्षेत्र नामक स्थल में कौरव और पाण्डवों की सेना में युद्ध हुआ था। अन्यत्र भी इसी की पुष्टि में प्रमाण मिलते हैं—

एतत् कलियुगं नाम ह्यचिरात् यत् प्रवर्त्तते।

कलि नामक युग शीघ्र आने वाला है अर्थात् कलियुग प्रारम्भ होने में कुछ ही वर्ष शेष रह गये हैं।

प्राप्तं कलियुगं विद्धि॥

कलियुग को आया हुवा ही जानो।

जैसे १५-२० वर्ष पहले से ही ईसा की २१वीं शताब्दी आने वाली है इसकी चर्चा समाचार पत्रों में आने लग गई थी। जब एक शती के लिये भी १५-२० वर्ष की गणना गौण अर्थात् अल्प ही मानी जा रही है तो लाखों वर्षों के द्वापर की समाप्ति के ३५-४० वर्ष शेष रहने पर यह कहना कि "कलियुग शीघ्र ही लगने वाला है" कोई बहुत आश्चर्यजनक बात नहीं मानी जानी चाहिये।

१. अस्तु! ज्योतिष की गणना के आधार पर कलियुग को प्रारम्भ हुये ५०९३ वर्ष बीत गये हैं। भारतीय प्राचीन राजवंशावलियां

यत्र-तत्र उपलब्ध होती रहती हैं। जैसे वायु आदि पुराणों में अनेक राजवंशों की पीढियां वर्ष संख्या सहित दी हुई हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास के अन्त में महाराजा युधिष्ठिर से लेकर महाराजा यशपाल पर्यन्त अनेक राजवंशों की पीढ़ियां समय सहित दी हैं। हरयाणा के भाषा विभाग को भी डोगरी भाषा में लिखी "राजावली" नामक एक प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त हुआ था, इस ग्रन्थ में महाराज युधिष्ठिर से लेकर मुस्लिम शासन के लगभग अन्त तक की पीढियाँ वर्षसंख्या सहित लिखी हैं।

इनके अनुसार महाराज युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष, ८ मास और २५ दिन राज्य किया। इस प्रकार द्वापरान्त में महाभारत युद्ध के पश्चात् लगभग ३७ वर्ष का युधिष्ठिर का शासन तथा कलियुग के अब तक बीते हुये ५०९३ वर्ष मिलाकर आज २०४९ विक्रम संवत् तक ५१३० वर्ष महाभारत युद्ध को सिद्ध होते हैं।

२. प्रसिद्ध ज्योतिषी वृद्धगर्ग का प्रमाण देकर आचार्य वराहमिहिर ने अपने वाराहीसंहिता (बृहत्संहिता) नामक ग्रन्थ में लिखा है—

> आसन्मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
> षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥

अर्थात् जिस समय महाराजा युधिष्ठिर राज्य कर रहे थे, उस समय मुनि=सप्तर्षि (आकाशस्थ सात तारे) मघा नक्षत्र में थे। शककाल के आरम्भ और युधिष्ठिर के मध्य २५२६ वर्षों का अन्तर है। महाराजा युधिष्ठिर के समय ज्योतिष के अनुसार ग्रह-नक्षत्रों की आकाशीय स्थिति का वर्णन है। नक्षत्र २७ होते हैं। एक नक्षत्र के सामने सप्तर्षि १०० वर्ष तक स्थित रहते हैं। इस प्रकार २७०० वर्षों में एक सप्तर्षि चक्र पूरा होता है। महाराजा युधिष्ठिर के समय से लेकर २७०० वर्षों का एक चक्र पूरा होकर दूसरे चक्र के २४०० वर्ष बीत गये हैं। इस प्रकार भी २७००+२४००=

५१०० वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध प्रमाणित होता है। ज्योतिषीय विधि से सूक्ष्म गणना करके पूरी-पूरी संख्या भी निकाली जा सकती है उससे भी ५१३० वर्ष ही आयेंगे।

यह ज्योतिष का प्रमाण वायु, अग्नि आदि अनेक पुराणों में भी दिया हुआ है। इस आकाशीय स्थिति को किसी भी प्रकार से अप्रामाणिक नहीं ठहराया जा सकता।

३. आन्ध्रवंशी महाराज सत्याश्रय पुलकेशी का एक शिलालेख अयहोल नामक स्थान में मिला था। उसमें ३४ श्लोक हैं। उसके दो श्लोकों में शिलालेख के खोदे जाने का काल लिखा है। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ।।३४।।

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभूजाम् ।।३४।।

लगभग सौ वर्षों से इन श्लोकों का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया जाता रहा है, परन्तु सही अर्थ किसी ने भी नहीं किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् कीलहार्न, पं. भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर और उपन्यासकार पं. गुरुदत्त वैद्य ने इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार किया है—

जब महाभारत युद्ध को ३७३५, ३३७५, ३३८७ अथवा ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, उस समय शक राजाओं के संवत् के ५५६ अथवा ५०६ वर्ष बीत गये थे।

३०+३०००+७००+५=३७३५ वर्ष।

५०+६+५००=५५६ वर्ष

३०+३०००+१०७+५००+५०=३६८७।

६+५००=५०६ वर्ष

५१०० वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध प्रमाणित होता है। ज्योतिषीय विधि से सूक्ष्म गणना करके पूरी-पूरी संख्या भी निकाली जा सकती है उससे भी ५१३० वर्ष ही आयेंगे।

यह ज्योतिष का प्रमाण वायु, अग्नि आदि अनेक पुराणों में भी दिया हुआ है। इस आकाशीय स्थिति को किसी भी प्रकार से अप्रामाणिक नहीं ठहराया जा सकता।

३. आन्ध्रवंशी महाराज सत्याश्रय पुलकेशी का एक शिलालेख अयहोल नामक स्थान में मिला था। उसमें ३४ श्लोक हैं। उसके दो श्लोकों में शिलालेख के खोदे जाने का काल लिखा है। वे श्लोक इस प्रकार हैं—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥३४॥

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥३४॥

लगभग सौ वर्षों से इन श्लोकों का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया जाता रहा है, परन्तु सही अर्थ किसी ने भी नहीं किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् कीलहार्न, पं. भगवद्दत्त रिसर्चस्कालर और उपन्यासकार पं. गुरुदत्त वैद्य ने इन श्लोकों का अर्थ इस प्रकार किया है—

जब महाभारत युद्ध को ३७३५, ३३७५, ३३८७ अथवा ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे, उस समय शक राजाओं के संवत् के ५५६ अथवा ५०६ वर्ष बीत गये थे।

३०+३०००+७००+५=३७३५ वर्ष।

५०+६+५००=५५६ वर्ष

३०+३०००+१०७+५००+५०=३६८७।

६+५००=५०६ वर्ष

३०+३०००+१०७+५०० = ३६३७ वर्ष।
५०+६+५०० = ५५६ वर्ष

गम्भीरता से विचार करने पर इन श्लोकों के ये अर्थ उचित प्रतीत नहीं होते। पं. भगवद्दत्तजी ने भी इन श्लोकों के अर्थ में सन्देह प्रकट किया है

मेरे विचार से इन श्लोकों का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

३०+३०००+१०७+५ = ३१४२ ।
५०+६+५०० = ५५६

अर्थात् महाभारत युद्ध के पश्चात् कलियुग में ३१४२ वर्ष बीत जाने पर शकनृपतियों के ५५६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

सन् १९७४ में मैंने यह अर्थ पं. उदयवीरजी शास्त्री को बताकर उनसे इस अर्थ के विषय में सम्मति जाननी चाही तो वे बड़े प्रसन्न हुए और आचार्य वराहमिहिर के श्लोक 'षड्द्विकपञ्चद्वियुत: शककालस्तस्य राज्ञश्च'' के अर्थ के साथ इसकी संगति लगादी। वे भी इससे पूर्व इस श्लोक के अर्थ की समस्या में उलझे हुए थे। विदुर सेवा आश्रम बिजनौर के संस्थापक और अध्यक्ष श्री गिरिचरण अग्रवाल ने सन् १९७७ ई. में भारत के विद्वानों की एक गोष्ठी का आयोजन किया था, उस गोष्ठी का यही विषय था कि महाभारत युद्ध को कितना समय हो गया है। उस गोष्ठी में ४५ विद्वानों के लेख पढ़े गये थे। उनमें से लगभग ४० विद्वानों का यही मत था कि महाभारत युद्ध को ५००० (पांच हजार) वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इन सभी लेखों को पुस्तकरूप में मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली ने प्रकाशित भी कर दिया है। मैंने भी उस समय यही सिद्ध किया था कि महाभारत युद्ध को १९७७ ई. तक ५११४ वर्ष हो चुके हैं।

''त्रिशत्सु त्रिसहस्रेषु०'' इत्यादि श्लोकों के अर्थ में विद्वानों ने कई प्रकार की भूलें की हैं। यथा—'सप्ताब्द- शतयुक्तेषु' इस पद का अर्थ ७००

३०+३०००+१०७+५०० = ३६३७ वर्ष ।

५०+६+५०० = ५५६ वर्ष

गम्भीरता से विचार करने पर इन श्लोकों के ये अर्थ उचित प्रतीत नहीं होते। पं. भगवद्दत्तजी ने भी इन श्लोकों के अर्थ में सन्देह प्रकट किया है

मेरे विचार से इन श्लोकों का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है—

३०+३०००+१०७+५ = ३१४२ ।

५०+६+५०० = ५५६

अर्थात् महाभारत युद्ध के पश्चात् कलियुग में ३१४२ वर्ष बीत जाने पर शकनृपतियों के ५५६ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

सन् १९७४ में मैंने यह अर्थ पं. उदयवीरजी शास्त्री को बताकर उनसे इस अर्थ के विषय में सम्मति जाननी चाही तो वे बड़े प्रसन्न हुए और आचार्य वराहमिहिर के श्लोक 'षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च'' के अर्थ के साथ इसकी संगति लगादी। वे भी इससे पूर्व इस श्लोक के अर्थ की समस्या में उलझे हुए थे। विदुर सेवा आश्रम बिजनौर के संस्थापक और अध्यक्ष श्री गिरिचरण अग्रवाल ने सन् १९७७ ई. में भारत के विद्वानों की एक गोष्ठी का आयोजन किया था, उस गोष्ठी का यही विषय था कि महाभारत युद्ध को कितना समय हो गया है। उस गोष्ठी में ४५ विद्वानों के लेख पढ़े गये थे। उनमें से लगभग ४० विद्वानों का यही मत था कि महाभारत युद्ध को ५००० (पांच हजार) वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इन सभी लेखों को पुस्तकरूप में मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली ने प्रकाशित भी कर दिया है। मैंने भी उस समय यही सिद्ध किया था कि महाभारत युद्ध को १९७७ ई. तक ५११४ वर्ष हो चुके हैं।

''त्रिशत्सु त्रिसहस्रेषु०'' इत्यादि श्लोकों के अर्थ में विद्वानों ने कई प्रकार की भूलें की हैं। यथा—'सप्ताब्द- शतयुक्तेषु' इस पद का अर्थ ७००

(सात सौ) किया है। जबकि इसका शुद्ध अर्थ १०७ (एक सौ सात) है। इसका सीधा अर्थ है, सप्त = सात, अब्द = वर्ष, शतयुक्तेषु = सौ से युक्त। युक्त का अर्थ जुड़ा हुआ होता है न कि गुणित। सात सौ के लिए 'शतगुणितेषु' पाठ होना चाहिए था। जिन विद्वानों ने एक सौ सात अर्थ किया है वे भी अगले पद, 'गतेष्वब्देषुपञ्चसु' = पांच वर्ष बीतने पर, के स्थानमें 'शतेष्वब्देषु-पञ्चसु' = पांच सौ वर्ष बीत जाने पर यह अर्थ करते हैं। ब्राह्मीलिपि में 'शकार' और 'गकार' की लिखावट में अतिस्वल्प ही भेद होता है। मूल शिला लेख में 'गकार' किञ्चित् त्रुटित है, इसीलिये वह 'शकार' होने का सन्देह कर देता है और 'गत' को 'शत' पढ़ने की भूल हो गई। इस भ्रम के निराकरण का एक उपाय और भी है, वह यह कि संस्कृत के श्लोकों में जहां संख्यावाचक पद पढ़े जाते हैं, वहाँ इकाई, दहाई, सैकड़ा और हजार आदि की संख्या दिखाने के लिए एक ही वार पद का प्रयोग किया जाता है। जैसे हमारे द्वारा किये गये अर्थ में—दहाई के त्रिशत्सु = ३०। हजार के लिए त्रिसहस्रेषु = ३०००। सैंकड़े के लिए सप्ताब्दशतयुक्तेषु = १०७। और इकाई के लिए गतेष्वब्देषुपञ्चसु = ५, ये पद पृथक् पृथक् पढे हैं। इनका योग हो गया ३१४२ वर्ष। अन्य विद्वानों ने सैंकड़े और दहाई के लिए दो-दो संख्यायें मान ली तथा इकाई के लिए कोई पद नहीं बचाया। इसीलिये वे खींचतान करके अर्थ की संगति लगाने का प्रयास करते हैं। पुनरपि सफलता नहीं मिलती। हमने अपने अर्थ में सहज स्वाभाविक पद्धति अपनाई है इसीलिये सही अर्थ बन पाया है। अपने विचारानुसार श्लोक के पदों का अर्थ न करके करना यह चाहिए कि विना पूर्वाग्रह के पदों से क्या अर्थ निकलता है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि महाभारतयुद्ध के इधर—पश्चात् कलियुग में ३१४२ वर्ष बीत जाने पर शक राजाओं के ५५६ वर्ष बीत चुके थे। अब देखना यह है कि ये शकनृप कौन थे, जिनके एक राजा को कलियुग के ३१४२ वर्ष बीतने पर ५५६ वर्ष हो चुके थे। ३१४२—५५६ = २५८६

वर्ष बीतने पर कोई शकराजा होना चाहिए। वृद्ध गर्ग के अनुसार युधिष्ठिर के राज्य के अन्त तथा शकराज के प्रारम्भ के बीच में २५२६ वर्षों का अन्तर था। इस संगति से दोनों (शीलालेख तथा वाराही-संहिता के) शक पद किसी एक ही राजवंश से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं।

भारतीय राजाओं की सहायता से ईरान=शकद्वीप के राजा साईरस=कुरुष ने ईरानी साम्राज्य की स्थापना की थी और उसकी स्मृति में एक शकसंवत् का प्रचलन किया था। यह शक संवत् लगभग ५५० वर्ष विक्रमपूर्व चला था। इसकी चर्चा आचार्य वराहमिहिर तथा भास्कराचार्य ने भी की है। अलबेरुनी ने भी दो शकसंवतों की चर्चा की है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि ग्रन्थ में अपना समय १०३६ शककाल लिखा है। यह भी विक्रमपूर्व का ही शकसंवत् है। आधुनिक इतिहासकारों ने इस संवत् को वर्तमान प्रचलित शालिवाहन शकसंवत् मानकर भास्कराचार्य को ११५० ई. में माना है। ऐसे विद्वानों से हमारा प्रश्न है कि सन् १०३० ई. में भारत में आया अलबेरुनी यात्री भास्कराचार्य की चर्चा किस प्रकार कर सकता है? इस प्रश्न का इनके पास कोई समाधान नहीं है। इसलिए विक्रम से पूर्ववर्ती शकसंवत् मानने से ही अनेक विसंगतियाँ दूर हो सकती हैं। प्राचीन प्रमाणों की सभी दृष्टियों से विचारकर तथ्यों की तह तक जाना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकों के इस अर्थ से स्पष्ट है कि जब महाभारत युद्ध के पश्चात् कलियुग के ३१४२ वर्ष बीते थे, तब शक राजाओं के ५५६ वर्ष बीत चुके थे। बृहत्संहिता के श्लोक षड्द्विकपञ्चद्वियुतः के अनुसार युधिष्ठिर और शकनृप के मध्य २५२६ वर्ष का अन्तर है। यह शकराज ईरानी राजा साइरस था। इसकी दो पीढ़ियां और हुई थीं, इन तीनों ने लगभग ६० वर्ष शासन किया था, ऐसा पं. उदयवीरजी शास्त्री का कथन है। इस प्रकार ३१४२—५५६=२५८६—६०=२५२६ वर्ष शक से पूर्व ही युधिष्ठिर का समय आता है। महाभारत से इधर ३१४२ वर्ष

बीते +१ वर्ष (एक वर्ष) युद्ध के पश्चात् व्यवस्था आदि सम्भालने में+तथा लगभग ३७ वर्ष का युधिष्ठिर का राज्यकाल(१+३७+३१०४ वर्ष कलियुग में पुलकेशी तक बीते थे) =३१४२। आज कलियुग ५०९३ हो चुका है, ५०९३—३१०४=१९८८। अर्थात् १९८८ वर्ष पूर्व पुलकेशी हुआ था। महाभारत युद्धकाल १९८८+३१०४+३८=५१३० वर्ष पूर्व था। आज विक्रमसंवत् २०४९ तथा सन् १९९३ तक महाभारत के युद्ध को ५१३० वर्ष बीत चुके हैं।

इस प्रकार सिद्ध है कि महाभारत को ५१३० वर्ष हो गये हैं और महाभारत युद्ध के पश्चात् कलियुग के २५२६ वर्ष बीतने पर ईरान में एक शकसंवत् का प्रारम्भ हुआ था, इसे भारत में भी अपना लिया गया था, इसी की चर्चा वराहमिहिर, भास्कराचार्य तथा शिलालेख में भी की गई है। अन्यत्र भी इसके प्रमाण मिलते हैं। इसी शक को नाम-साम्य के कारण वर्तमान शालिवाहन शक मानकर भूलें होती रही हैं। इनको दो पृथक्-पृथक् शककाल (शकसंवत्) मानने से सारी समस्यायें दूर हो जाती हैं। यहां साहित्य, ज्योतिष और पुरातत्त्व के साक्ष्यों से महाभारत युद्ध का सही समय आज से ५१३० वर्षपूर्व होता है। सुधीजनों को इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये।

□□

महात्मा बुद्ध कब हुये ?

भारतीय इतिहास में महात्मा बुद्ध का विशेष स्थान है । इतने विशिष्ट महापुरुष के जन्म और मृत्यु के विषय में इतिहासकार अभी तक एक मत नहीं हो पाये हैं । आज महात्मा बुद्ध के जन्म और निर्वाण के विषय में २३ विभिन्न मत प्रचलित हैं ।

महात्मा बुद्ध के काल विषय में तीन परम्परायें चल रही हैं—

१. श्रीलंका की बौद्ध परम्परा । इसमें बुद्ध का निर्वाण काल ५४३ वर्ष ईसवी पूर्व हुआ मानते हैं । यह दक्षिण बौद्धों की मान्यता है ।

२. तिब्बत, चीन, जापान, नेपाल आदि उत्तरीय देशों की बौद्ध परम्परा के अनुसार निर्वाणकाल ६३८ वर्ष ईसवी पूर्व है । इस परम्परा में ९५०, ११३०, १०४५, १०७० आदि कई मान्यतायें और भी हैं ।

३. भारतीय संस्कृत साहित्य की पुराण आदि ग्रन्थों की परम्परा । इसके अनुसार लगभग १८०० वर्ष ईसवी पूर्व महात्मा बुद्ध का समय निर्धारित होता है ।

चीनी यात्री ह्यूनसांग नालन्दा विश्वविद्यालय में अनेक वर्षों तक शीलभद्रादि बौद्ध आचार्यों से शिक्षा ग्रहण करता रहा था । उसके समय में ही उससे ९००, १०००, १२००, १३०० और १५०२ वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का निर्वाण माना जाता था । दूसरे चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है—

मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाण काल से तीन सौ वर्ष पश्चात् हुई । उस समय हान देश में चाववंशी राजा पिग का राज था । राजा पिग का राजकाल ७५० से ७१९ ई. पू. तक था । इसके अनुसार महात्मा बुद्ध का निर्वाणकाल १०५० ईसवी पूर्व सिद्ध होता है ।

आजकल पाश्चात्य परम्परा के अनुसार पठित इतिहासविद् तथा उनके भारतीय शिष्य लंका की परम्परा वाली ५४३ वर्ष ईसवी पूर्व की तिथि

को ही सही मान रहे है। चीन आदि की परम्परा को भी ये लोग स्वीकार नहीं करते। जब बौद्ध ग्रन्थों में ही अपने धर्मगुरु के समय के विषय में इतनी भ्रांतियां और मतभेद है तो वे अन्य ऐतिहासिक तथ्यों का कालक्रम कितना सही रख सकते हैं, यह भी एक चिन्तनीय विषय है। बौद्ध ग्रन्थ दशरथजातक में सीता को राम की भगिनी = बहन लिखा है। ऐसे बौद्ध ग्रन्थों को प्रामाणिक मानना कितना न्यायसंगत है, इसे सुधी पाठकजन स्वयं विचार सकते हैं।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार पुराणों में महाभारत युद्ध के पश्चात् के भारतीय राजाओं की वंशावलियां राजवर्ष पूर्वक दी हुई हैं। महात्मा बुद्ध के समकालीन शासकों की वंशावली से महात्मा बुद्ध का सही समय ज्ञात किया जा सकता है। वह इस प्रकार है—

महाभारत युद्ध के पश्चात्

सोमाधि से रिपुञ्जय तक २२ बार्हद्रथ राजाओं का राज्यकाल—	१००० वर्ष
५ प्रद्योतवंशीय राजाओं का राजकाल—	१३८ "
शैशुनाग वंशीय छठे राजा के आठवें वर्ष तक—	१७२ "
	१३१० वर्ष

(अजातशत्रु छठा शासक था) महाराज अजातशत्रु के सिंहासनारूढ होने के ८ वर्ष पश्चात् महात्मा बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे।

महाभारत युद्ध से अजातशत्रु तक १३१० वर्ष बीत चुके थे। महाभारत युद्ध को आज विक्रमसंवत् २०४९ (१९९३ ई. सन्) तक ५१३० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इस प्रकार महात्मा बुद्ध को आज ५१३०—१३१० = ३८२० वर्ष के लगभग हो चुके हैं।

यद्यपि पुराणों में दी गई वंशावलियों की वर्षसंख्या में विभिन्नता भी है, यह भिन्नता काल, स्थान और लेखकभेद से आगई है। इन सबके आधार पर एक शुद्ध वंशावली तैयार की जानी चाहिये।

को ही सही मान रहे हैं। चीन आदि की परम्परा को भी ये लोग स्वीकार नहीं करते। जब बौद्ध ग्रन्थों में ही अपने धर्मगुरु के समय के विषय में इतनी भ्रांतियां और मतभेद है तो वे अन्य ऐतिहासिक तथ्यों का कालक्रम कितना सही रख सकते हैं, यह भी एक चिन्तनीय विषय है। बौद्ध ग्रन्थ दशरथजातक में सीता को राम की भगिनी = बहन लिखा है। ऐसे बौद्ध ग्रन्थों को प्रामाणिक मानना कितना न्यायसंगत है, इसे सुधी पाठकजन स्वयं विचार सकते हैं।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार पुराणों में महाभारत युद्ध के पश्चात् के भारतीय राजाओं की वंशावलियां राजवर्ष पूर्वक दी हुई हैं। महात्मा बुद्ध के समकालीन शासकों की वंशावली से महात्मा बुद्ध का सही समय ज्ञात किया जा सकता है। वह इस प्रकार है—

महाभारत युद्ध के पश्चात्

सोमाधि से रिपुञ्जय तक २२ बार्हद्रथ राजाओं का राज्यकाल—	१००० वर्ष
५ प्रद्योतवंशीय राजाओं का राजकाल—	१३८ "
शैशुनाग वंशीय छठे राजा के आठवें वर्ष तक—	१७२ "
	१३१० वर्ष

(अजातशत्रु छठा शासक था) महाराज अजातशत्रु के सिंहासनारूढ होने के ८ वर्ष पश्चात् महात्मा बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे।

महाभारत युद्ध से अजातशत्रु तक १३१० वर्ष बीत चुके थे। महाभारत युद्ध को आज विक्रमसंवत् २०४९ (१९९३ ई. सन्) तक ५१३० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। इस प्रकार महात्मा बुद्ध को आज ५१३०—१३१० = ३८२० वर्ष के लगभग हो चुके हैं।

यद्यपि पुराणों में दी गई वंशावलियों की वर्षसंख्या में विभिन्नता भी है, यह भिन्नता काल, स्थान और लेखकभेद से आगई है। इन सबके आधार पर एक शुद्ध वंशावली तैयार की जानी चाहिये।

महाभारत युद्ध के पश्चात् बृहद्‌क्षण की २४ वीं पीढी में महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। इनके पश्चात् शासक और भी हुये। उन २४+६=३० शासकों ने १५०४ वर्ष तक राज किया। इनकी २४ वीं पीढी अर्थात् महात्मा बुद्ध के समय मगध शासकों की ३१, ३२ और ३३ वीं पीढी चल रही थी। ये थे क्षत्रौजा बिम्बिसार और अजातशत्रु। जब महात्मा बुद्ध ७२ वर्ष के थे तब अजातशत्रु राज्यसिंहासन पर आसीन हुये थे। महात्मा बुद्ध ने ८० वर्ष की आयु पाई। अर्थात् अजातशत्रु के आठवें राज्य वर्ष में महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुवा था।

कश्मीर के इतिहासग्रन्थ राजतरंगिणी से भी महात्मा बुद्ध अतिप्राचीन सिद्ध होते हैं। राजतरंगिणीकार कल्हण ने कश्मीर के राजा अभिमन्यु के पुत्र गोनन्द तृतीय से लेकर अपने समय (११४८ ई.) तक के राजाओं का २३३० वर्षों का इतिहास लिखा है। अर्थात् २३३०—११४८=११८२ ईसवी पूर्व में गोनन्द तृतीय कश्मीर में राज्य कर रहा था। उसके पिता अभिमन्यु ने ५२ वर्ष तक शासन किया। ११८२+५२=१२३४ वर्ष ईसा पूर्व में कश्मीर पर अभिमन्यु राज्य कर रहा था। उसी समय उसके पूर्वज कनिष्क का ६० वर्षीय शासनकाल समाप्त हुवा था। इससे सिद्ध हुवा कि ६०+१२३४=१२९४ ई. पूर्व में कनिष्क का राज्य प्रारम्भ हुवा था। आज विक्रमसंवत् २०५० (सन् १९९३) में कनिष्क को १२९४+१९९३ ई. सन्=३२८७ (तीन हजार दोसौ सत्तासी) वर्ष हो चुके हैं। बौद्ध विद्वान् नागार्जुन कनिष्क के समय में ही कश्मीर में गया था। वर्तमान इतिहासवेत्ता कनिष्क को ७८ ई. सन् में मानते हैं अर्थात् आज से १९१५ वर्ष पूर्व।

राजतरंगिणी के अनुसार कनिष्क के समकालीन लोकधातु से १५० वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का निर्वाण हुवा था। इसके अनुसार १५०+१२९४ (कनिष्क का समय)=१४४४ वर्ष ईसा पूर्व (१४४४+१९९३ ई. सन्)=३४३७ (तीन हजार चार सौ सैंतीस) वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध का निर्वाण

हुवा था। पुराणों और राजतरंगिणी के लेखों का सामञ्जस्य बैठाने का यत्न करना चाहिये, जिससे दोनों के अन्तर का पता लगाया जा सके। इतना होने पर भी वर्तमान इतिहासकारों द्वारा मानी हुई छठी शताब्दी ईसा पूर्व की तिथि तो नितान्त ही अग्राह्य है। किसी भी शिलालेख आदि का साक्षात्प्रमाण अभी तक कोई विद्वान् नहीं दे पाया है। क्योंकि शिलालेखों पर प्रायः करके प्रचलित संवत् न लिखकर राज्यवर्ष अथवा अपने अपने कुलों के संवत् लिखे मिलते हैं। इनका अर्थ प्रायशः खींचतान करके ही लगाते हैं। कोई भी विद्वान् मूल लेख को न देखकर पहले के लिखे पढ़े लेखों का ही उद्धरण मात्र देते चले आते हैं। मूललेख की चर्चा में यह बता देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बहुत से विद्वानों से मैंने जानना चाहा कि वह यूनानी मूल लेख क्या है जिसके आधार पर ३२६ ई. पू. में सिकन्दर का भारत आना बताया गया है तो कोई भी नहीं बता पाया। मूल लेख में तो ३२६ ईसा पूर्व पद नहीं होगा। इसी प्रकार सभी कालों में किया गया है।

प्रसंगवश कनिष्क की भी एक चर्चा करना अनुपयुक्त नहीं होगा। राजतरंगिणी के अनुसार कनिष्क, हुष्क(हुविष्क) और जुष्क ने एक साथ राज्य किया था। वर्तमान इतिहासकार इन तीनों को पृथक्-पृथक् समय में मानते हैं और शिलालेखों के संवत् पढ कर यही सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि ये आगे पीछे हुये हैं। इनकी समकालिकता का पुरातत्वीय ठोस प्रमाण भी मिल चुका है। सन् १९६४ ई. में हरयाणा प्रान्तीय पुरातत्त्व संग्रहालय गुरुकुल झज्जर की ओर से आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्दजी) ने नौरंगाबाद के प्राचीन खण्डहर की खुदाई कराई थी। उसी खुदाई के समय कुषाण राजाओं की मुद्रा ढालने के ठप्पे (सांचे) मिले थे। उन ठप्पों में अनेक ठप्पे ऐसे हैं जिनमें एक ही फलक में कनिष्क और हुविष्क दोनों के सिक्के एक ही साथ बनाये जाते थे, उनसे सिद्ध है कि कनिष्क और हुविष्क दोनों एक ही साथ शासन कर रहे थे। राजतरंगिणी के लेख की पुष्टि इस पुरातत्त्वीय प्रमाण से हो जाती है। अतः पाश्चात्य इतिहासकारों की उक्त धारणा अमान्य है।

महात्मा बुद्ध के विषय में विभिन्न मतों में से कुछ मत यहां दिखाये जा रहे हैं, जिससे पाठकों को जानकारी हो सके।

१. प्राचीन चीनी, तिब्बती परम्परा—१०२७ वर्ष ई. पू.।

२. मुगलकालीन लेखक अबुलफजल—१३६६ वर्ष ईसापूर्व।

३. चीनी साहित्य के अनुसार अशोक ८५० वर्ष ईसा पूर्व सिद्ध होता है। बुद्ध तथा अशोक की मृत्यु के बीच ३७१ वर्ष मानते हैं, अतः ८५०+३७१=१२२१ वर्ष ईसापूर्व बुद्ध का निर्वाण हुवा ऐसा मैक्समूलर ने सिद्ध किया है।

४. लंका के साहित्य के अनुसार मैक्समूलर ने महात्मा बुद्ध का निर्वाण समय ६८६ वर्ष ईसापूर्व माना है।

५. डॉ. फ्लीट ने राजतरंगिणी के आधार पर बुद्ध का निर्वाण १६३१ वर्ष ईसापूर्व सिद्ध किया है, अर्थात् आज से १६३१+१९९३ (ई. सन्) =३६२४ वर्ष पूर्व।

६. श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक के मत में राजतरंगिणी के अनुसार महात्मा बुद्ध १४४४ वर्ष ईसा पूर्व में निर्वाण को प्राप्त हुये थे।

राजतरंगिणी के अनुसार तीनों विद्वान् तीन प्रकार के परिणाम निकाल रहे हैं, यह इनकी अपनी-अपनी बुद्धि-भेद का कारण है। वैसे कल्हण ने राजतरंगिणी में एक ही समय दिया है, उसे समझना चाहिये।

७. ए. वी. त्यागराज अय्यर एक शिलालेख के द्वारा बुद्ध को १७ वीं शताब्दी ईसा पूर्व सिद्ध करते हैं।

८. चीनी यात्री फाह्यान के अनुसार १०५० वर्ष ईसा पूर्व बुद्धनिर्वाण माना जाता है।

ये सभी मान्यतायें परस्पर एकमत नहीं हैं, पुनरपि वर्तमान प्रचलित मान्यता से बहुत प्राचीन सिद्ध करती हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार हम

पुराणों में दी गई वंशावलियों को सर्वाधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय समझते हैं। पाठभेद उनमें अवश्य हैं, वे भी तुलनात्मक अध्ययन से ठीक किये जा सकते हैं। लंका और चीन जापान आदि की तिथियों में भेद का कारण यह हो सकता है कि भारत में बुद्धधर्म का प्रसार होने के बहुत वर्षों बाद वहां पहुंचा है। इतने लम्बे अन्तराल में लोग सुनी सुनाई बातों पर भी विश्वास करने लग जाते हैं। जैसे कि यूनानी लेखकों ने सुनी सुनाई बातों के आधार पर भारत के विषय में अनेक भ्रान्त धारणायें पैदा कर दी, वे ही आज परम प्रमाण के रूप में मानी जा रही हैं।

एक समय था जब सारा एशिया महाद्वीप बुद्धमय हो गया था। साधारण जनता द्वारा बुद्ध के प्रमुख शिष्य और बाद के भिक्षु, श्रमण आदि भी बुद्ध के समान ही पूज्य और श्रद्धा की दृष्टि से ही देखे जाने लगे थे। उनकी दृष्टि में वे ही बुद्ध भगवान् थे। जैसे आज पढेलिखे लोग भी भारत में खड़ाऊँ की नई जोड़ी को 'रामपादुका' और मन्दिर के लिये खरीदी और बनाई गई राम नाम की ईंटों को रामायणकालीन राम की भावना के अनुकूल अन्धश्रद्धावश पूजते हैं, उसी प्रकार एक समय में सभी संन्यासी बुद्ध के रूप के ही माने जाते थे। वहीं से कालक्रम परम्परा विकृत हो गई और किसी भी बड़े बौद्धभिक्षु की मृत्यु को बुद्धनिर्वाण की तिथि का रूप धीरे-धीरे मिलता गया और अनेक मत खड़े होते गये।

आवश्यकता इस बात की है कि पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर प्राचीन तिथि संवतों का सही और प्रामाणिक रूप में विश्लेषण किया जाये, जिससे भारतीय इतिहास की सभी तिथियां पुनः परीक्षित हो सकें। महात्मा बुद्ध के समय के साथ ही जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी का भी काल निर्धारण स्वतः हो जायेगा।

□□

यवनराज सिकन्दर की समसामयिकता पर पुनर्विचार

यवनदेश (यूनान) के सम्राट् सिकन्दर ने ३२६ ईसापूर्व में भारत पर आक्रमण किया था। उस समय भारत में प्रमुख रूप से किस शासक का शासन था, यह विचारणीय है। अभी तक तो यही प्रसिद्ध है कि सिकन्दर के समय मगध पर चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य था और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। किन्तु यवन इतिहासकारों ने जिन यूनानी शब्दों का प्रयोग किया है उनके आधार पर उक्त धारणा को स्वीकार करने में अनेक विसंगतियां प्रतीत होती हैं, उन्हीं के विषय में कुछ तथ्य यहां दिये जा रहे हैं जिससे भावी शोधकर्त्ता और इतिहासलेखक सत्यता के अधिक निकट पहुंच सके।

यवन राजदूत मेगास्थनेज बहुत समय तक भारत के एक स्थान पलिबोथ्र में निवास करता रहा है, ऐसा उसके लेखों से प्रतीत होता है। वह लिखता है—

१. हरकुलीस अनेक नगरों का निर्माता था। उनमें सबसे प्रसिद्ध पलिबोथ्र था।

२. परन्तु प्रसई शक्ति में बढ़े चढ़े हैं।........उनकी राजधानी पलिबोथ्र है। इस नगर के कारण अनेक लोग इस प्रदेश के निवासियों को 'पलिबोथ्री' कहते हैं। यही नहीं गंगा के साथ-साथ का सारा भूभाग इसी नाम से पुकारा जाता है।

३. जोमेनस (=यमुना) नदी पलिबोथ्र में से बहती हुई मेथोरा (=मथुरा) और करिसोवर (=करूष ?) के मध्य में गंगा में मिलती है।

४. परन्तु एक पथ भी है जो पलिबोथ्र में से होकर भारतवर्ष को जाता है।

जर्मनदेशीय डॉ. श्वेनबेक का कथन है कि एराटोस्थेनेस स्ट्रेबो और प्लायनि आदि प्राचीन यवन लेखक मेगास्थेनेस को अप्रमाणिक समझते थे।

सर विलियम जोन्स ने २८ फरवरी १७९३ ई. को 'पलिबोथ्र' शब्द का समीकरण 'पाटलिपुत्र' शब्द से किया। इस विचार का समर्थन मैक्समूलर आदि ने भी किया, परन्तु ट्रायर इस विचारधारा से सहमत नहीं हो पाया।

सर जोन्स के अनुसार यदि 'पलिबोथ्र' को पाटलिपुत्र मान लिया जाता है तो निम्नलिखित आपत्तियां आती हैं—

१. भारतीय मतानुसार मगध (=बिहार) देश का पाटलिपुत्र उदायी द्वारा बसाया गया था। पलिबोथ्र में वर्षों तक राजदूत के रूप में रहने वाला मेगास्थनेस पलिबोथ्र को हरकुलीस(=विष्णु सुरकुलीश) द्वारा बसाया गया बताता है। यह असंगति स्पष्ट है।

२. पलिबोथ्र प्रसई = Prasii (फर्सई = Pharrasii) की राजधानी थी। यह भारत की राजधानी नहीं थी। उससे कोसों आगे पीछे का प्रदेश भी 'पलिबोथ्री' कहलाता था।

३. यमुना नदी पलिबोथ्र में से बहती थी। उसके एक ओर मथुरा तथा दूसरी ओर कलिसोवर था। पलिबोथ्र को पाटलिपुत्र मानने पर ये दोनों बातें सिद्ध नहीं होती। कहाँ यमुना नदी और कहाँ पाटलिपुत्र नगर, कोई सामञ्जस्य ही नहीं बैठता।

४. यवनों का इंडिया (भारत) पलिबोथ्र से परे था।

मेगास्थनेस ने लिखा है कि गंगा में उन्नीस नदियां मिलती हुई बताई जाती हैं। जैसे—कोण्डोचटेस, एर्रोनोबोओस, कोसाएगस, सोनस आदि। इन नदियों में जहाज भी चल सकते थे।

एर्रानोबोअ्रोस = हिरण्यबाहु और सोनस = शोण ये दोनों पृथक्-पृथक् नदियां हैं। परन्तु जोन्स ने सम्भवतः अमरकोश के आधार पर हिरण्यबाहु और शोण को एक ही नदी के दो नाम मानकर यह सिद्ध करना चाहा है कि मेगास्थनेस ने यहां भूल से एक ही नदी को दो नदियां मानकर यह लिख दिया है। परन्तु मेगास्थनेस जैसा राजदूत इतनी बड़ी भूल नहीं कर सकता था। यहां स्पष्ट ही जोन्स का कथन अयुक्त है। क्योंकि एर्रानोबोअ्रोस शब्द हिरण्यबाहु का यवनानी रूप न होकर 'आरुणीवहा' का यूनानी रूप है। आरुणीवहा यमुना नदी का पर्यायवाची नाम है। जैसे—सूर्यजा, अरुणजा, सूर्यकन्या आदि।

यदि जोन्स के इस मत को स्वीकार कर लिया जाता है तो और भी कई आपत्तियां आ जाती हैं, जैसे—

१. मेगास्थनेस आदि यवनलेखकों के अनुसार पलिबोथ्र नगर प्रसई के प्रांत में था। जोन्स के मतानुयायी विद्वान् प्रसई शब्द का समीकरण 'प्राच्य' शब्द से करते हैं। यदि यह सही हो तो 'सिन्धुतट प्रसई की सीमा पर है' मेगास्थनेस के इस कथन की संगति कैसे लग सकेगी।

महाभारत के अनुसार—

चेदिवत्साः करूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः।

चेदिवत्स, करुष, भोज और सिन्धुपुलिन्दक ये जनपद मध्यदेश के अन्तर्गत थे। मेगास्थनेस का संकेत इसी सिन्धुतट की ओर है। इसे काली-सिन्ध के नाम से भी जाना जाता है।

२. मेगास्थनेस के अनुसार मोडेनेस और सुआरी लोगों के प्रदेश में मलेउस पर्वत है। ""पलिबोथ्र से आगे मलेउस पर्वत है।

यदि पाटलिपुत्र को पलिबोथ्र माना जाए तो उसके निकट मलेउस पर्वत का संस्कृत नाम ढूंढना होगा, जो कि नहीं है। यूल इसे बिहार का पार्श्वनाथ पर्वत मानता है। यद्यपि पार्श्वनाथ पर्वत मल्ल जनपद में है, परन्तु

वह 'मल्लपर्वत' नहीं कहलाता। हां! मध्यप्रदेश में एक मल्लजाति शाल्व और युगन्धरों के साथ रहती थी। कुरुदेश के चारों ओर के जनपदों के नामों में शाल्व आदि नामों का वर्णन मिलता है।

३. यवनलेखक टाल्मी के अनुसार प्रसई के प्रांत के नीचे 'सौरवतिस' प्रान्त है। अनेक लेखकों के अनुसार 'सौरवतिस' शब्द का भारतीय रूप चन्द्रावती या छत्रावती (अहिच्छत्रा) हो सकता है। शरावती अथवा शूरवत्स से भी इसकी साम्यता सिद्ध की जा सकती है। परन्तु अहिच्छत्रा के लिए ही यह अधिक उपयुक्त लगता है। अहिच्छत्रा (वर्तमान बरेली) से परे यवनों का प्रसई प्रांत होना चाहिए।

पाटलिपुत्र को पलिबोथ्र मानने से टाल्मी का लेख असत्य हो जायेगा। जबकि टाल्मी का लेख ही इतिहास की सचाई है।

४. मेगास्थनेस आदि यवन लेखकों के आधार पर अरायन ने लिखा है—

मेगास्थनेस सण्ड्राकोटोस की राजसभा में रहता था। वह भारत में सबसे बड़ा राजा था। मेगास्थनेस पोरोस की राजसभा में भी रहता था। पोरोस सण्ड्राकोटोस से बड़ा राजा था।

पोरोस पञ्जाब के दो विषयों (जनपदों) का शासक था। इसलिए सण्ड्राकोटोस भारत का सम्राट् नहीं हो सकता। वह कोई छोटा शासक रहा होगा। मेगास्थनेस इन दोनों शासकों को भलीभांति जानता था, वह अपने वर्णन में भूल नहीं कर सकता।

५. प्लायनी लिखता है—

वहाँ से गंगा यमुना के संगम तक ६२५ मील और पलिबोथ्र नगर तक ४२५ मील।

इससे सिद्ध होता है कि पलिबोथ्र से गंगायमुना का संगम २०० मील आगे था। इस स्पष्ट अभिप्राय को जोड़ तोड़ उल्टी सीधी संगति लगाकर

आजकल के विद्वानों ने इस रूप में उपस्थित कर दिया है 'गंगा यमुना के संगम से २०० मील आगे पलिबोथ्र था।' यह कथन प्लायनी के अभिप्राय को सर्वथा ही उलट देता है। जबकि प्लायनी का लेख सत्य है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मेगास्थनेस का पलिबोथ्र मगध का पाटलिपुत्र कदापि नहीं हो सकता। उपर्युक्त सभी आपत्तियों का निराकरण किये बिना पलिबोथ्र को पाटलिपुत्र बताते रहना हठ और दुराग्रह ही कहा जा सकता है।

पलिबोथ्र किसका वाचक है ?

उपर्युक्त वर्णन से यह सिद्ध हो गया कि पलिबोथ्र पाटलिपुत्र तो हो नहीं सकता, पुनः पलिबोथ्र शब्द किसके लिये प्रयुक्त हुआ है ? इसका उत्तर यह है कि महाभारत के भीष्मपर्व, उद्योगपर्व और कर्णपर्व में प्रभद्रकों का वर्णन है। भारतीय इतिहास के अनुसार पञ्चालों के साथ एक प्रभद्र, प्रभद्रक अथवा पारिभद्र जनपद था। क्षीर स्वामी के मतानुसार प्रभद्र और पारिभद्र समानार्थक हैं। पराशरकृत ज्योतिषसंहिता और वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता में भी भद्र जनपद की चर्चा है। पुराणों में तथा काशिका में भद्रकार जनपद मध्यदेश का साल्वावयव जनपद बताया गया है।

नैश जनपद से पलिबोथ्र की दूरी

स्ट्रैबो द्वारा उद्धृत मेगास्थनेस के लेखों के आधार पर जर्मन विद्वान् श्वनबेक लिखता है कि पश्चिम (काबुल) से पलिबोथ्र तक दस हजार स्टेडिया की दूरी है। गंगा के जलमार्ग द्वारा पलिबोथ्र से समुद्र तक ६००० स्टेडिया की दूरी अनुमित की गई है। १० स्टेडिया के लगभग कोई भारतीय मान होना चाहिये, यह एक कोश से कम नहीं हो सकता।

इस आधार पर महाभाष्यकार आदि द्वारा वर्णित नैश जनपद से लेकर पलिबोथ्र तक १००० कोश अर्थात् १२५० मील की दूरी थी। नैश जनपद अफगानिस्तान में था। यदि पलिबोथ्र को पाटलिपुत्र माना जाये तो

कौन ऐसा विद्वान् है जो काबुल से लेकर बिहार प्रांत के पाटलिपुत्र तक १२५० मील की दूरी स्वीकार करेगा। यह तो पारिभद्र के साथ ही संगत हो सकता है।

यह नैश जनपद यवन लेखकों का न्यस हो सकता है। मेगास्थनेस के अनुसार यह न्यस पाण्डयिक राज्य या स्त्रीराज्य में था। वराहमिहिर के अनुसार एक स्त्रीराज्य पश्चिमोत्तर में था। यहीं से पाटलिपुत्र तक न्यस्सियन राजमार्ग था।

कुछ और आपत्तियां और उनका निराकरण

१. यवन लेखकों के अनुसार सिकन्दर का सामना करने लिए प्रसई के राज्य और उनके साथी गन्दरितन = Gandaritan लोग तैयार थे। हमारे विचार से ये गन्दरितन लोग प्राच्यदिशा के लोग न होकर क्षत्रिय साल्वों के अवयव युगन्धर थे और प्रसई का राजा भद्रकार वा पारिभद्र लोग थे।

२. ईलियट भाग १, पृ. १०८-१०९ के अनुसार सिकन्दर का समकालिक सिन्ध का राजा हाल था। यह सातवाहन काल में था। यह समस्या भी समाधान चाहती है।

३. मेगास्थनेस के अनुसार सेण्ड्राकोटोस का पुत्र अमित्रोकेडेस वा अल्लित्रोकेडेस था। चन्द्रगुप्त मौर्य का इस नाम का कोई पुत्र ज्ञात नहीं है। गुप्तशासकों में यह नाम खोजा जा सकता है।

४. मेगास्थनेस के अनुसार उसके समय भारत में ११८ राज्य थे। नन्द और चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भारत की यह स्थिति नहीं थी। यह अवस्था समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त के समय की दिखाई देती है।

५. मेगास्थनेस को यदि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय स्वीकार किया जाए तो उसके किसी भी लेख से मौर्यकालीन महामन्त्री चाणक्य की गन्ध तक भी नहीं मिलती। यह तभी सम्भव है जबकि मेगास्थनेस मौर्य काल में भारत में न आकर गुप्तकाल में आया हो।

सिकन्दर गुप्तकाल में भारत आया था

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि यवनराज सिकन्दर चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य का समकालिक नहीं था। मेगास्थनेस के सभी लेखों का गम्भीर अध्ययन करने से लगता है कि यह सारा वर्णन चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि गुप्तसम्राटों के समय का है।

यूनानी लेखकों के क्सैण्ड्रमस, सैण्ड्राकोटोस और सैण्ड्राकोप्ट्स नाम भारतीय वाकाटक शासक चन्द्रश्री या चण्डश्री और गुप्तसम्राट चन्द्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त के साथ समीकरण किए जाने चाहियें। गुप्तों से पूर्व वाकाटक राज्य का अन्तिम शासक चण्डश्री वा चन्द्रश्री प्रसिद्ध है ही।

भारतीय कालक्रम से मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य और महामन्त्री चाणक्य तो १५६५ कलि संवत् अर्थात् १५३६ ई. पूर्व में हुए हैं। यह नवीन अन्वेषणों से सिद्ध हो गया है। पुराणों में जो वंशावलियां, वंशनाम और वर्षसंख्यापूर्वक लिखी हुई है उनका सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने से उपर्युक्त सत्यता सामने आजाती है। सम्भव है सत्यान्वेषी इतिहासकार इस विचार को सामने रखकर और अधिक अन्वेषण कर सकेंगे।

□□

स्वामी शंकराचार्य का समय

१. विक्रम संवत् १९३९ (१८८२ ईसवी) में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में लिखा था—

"बाईस सौ वर्ष हुए कि एक शङ्कराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेदमत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी ही हानि की बात हुई है, इनको हटाना चाहिए।"

जिस समय की यह घटना है उस समय आर्यावर्त देश में सुधन्वा नामक जैन राजा का राज्य था। महर्षि दयानन्दजी को उक्त वाक्य लिखे १११ वर्ष व्यतीत हो गये। आज विक्रमसंवत् २०५० और ईसवीसन् १९९३ है। तदनुसार आदि शंकराचार्य को आज तक लगभग २२००+१११= २३११ वर्ष हो चुके हैं।

२. आजकल के इतिहासकार आचार्य शंकर को ७८८ ईसवी से ८२० ईसवी तक मानते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों मतों में लगभग ११०० वर्षों का अन्तर है। अब अन्य प्रमाणों से इस विषय का विवेचन किया जायेगा कि कौन सत्य के अधिक निकटतम है।

३ आदिशङ्कराचार्य ने अपने जीवन काल में चार मठों की स्थापना की थी।

१. उत्तरदिशा में बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ—
स्थापना—युधिष्ठिर संवत् २६४१ से २६४५ के मध्य।

२. पश्चिम दिशा में द्वारिका में शारदामठ, स्थापना—युधिष्ठिर संवत् २६४८।

३. दक्षिण दिशा में शृंगेरी मठ— स्थापना—युधिष्ठिर संवत् २६४८।

४. पूर्व दिशा में जगन्नाथपुरी में गोवर्द्धनमठ, स्थापना—युधिष्ठिर संवत् २६५५।

स्वामी शंकराचार्य जी अन्तिम दिनों में कांची के कामकोटिमठ में निवास करते रहे थे। इस मठ की स्थापना २६५८ युधिष्ठिर संवत् में हुई थी।

इन मठों में आदि शंकराचार्य से लेकर आज तक के सभी आचार्यों का नाम काल वर्ष निर्देशपूर्वक लिखते आ रहे हैं। किसी मठ की परम्परा बीच में त्रुटित हो गई हो सो पृथक् बात है। श्री आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'वेदान्तदर्शन का इतिहास' में पृष्ठ ३१४ से ३३१ तक चारों मठों में विद्यमान पूर्ण गुरुपरम्परा का नाम-वर्ष निर्देशपूर्वक वर्णन किया है। स्वामी शङ्कराचार्य के सही समय निर्धारण के लिये इन मठों द्वारा सुरक्षित गुरुपरम्परा सर्वाधिक उपयोगी और प्रामाणिक है। त्रुटित परम्परा अपवाद हो सकती है। जैसे बदरिकाश्रम के ज्योतिर्मठ की परम्परा लगभग ८०० वर्ष तक खण्डित रही है। इन मठों में विद्यमान गुरुपरम्परा के अनुसार शारदा मठ में आदि गुरु श्री शङ्कराचार्य के लिये लिखा है—

युधिष्ठिरशके २६३१ वैशाखशुक्लापञ्चम्यां श्री मच्छङ्करावतारः। ....तदनु २६६३ कार्तिकशुक्लपूर्णिमायां ......श्रीमच्छंङ्करभगवत्-पूज्यपादा .... निजदेहेनैव .... निजधाम प्राविशन्निति।

अर्थात् युधिष्ठिर संवत् २६३१ में वैशाख मास के शुक्लपक्ष की पञ्चमी को श्री शङ्कराचार्य का जन्म हुआ और युधिष्ठिर संवत् २६६३ कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को देहत्याग हुआ।

युधिष्ठिर संवत् कलिसंवत् से ३८ वर्ष अधिक होता है। कलिसंवत् को आज २०५० विक्रमसंवत् में ५०९४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस प्रकार आज युधिष्ठिर संवत् ३८+५०९४=५१३२ सिद्ध होता है। इस गणनासे श्री शंकराचार्य के जन्म को आज ५१३२—२६३१= २५०१ वर्ष हो गये हैं। तदनुसार इनके देहावसान को ५१३२—२६६३=२४६९ वर्ष बीते हैं। इसे हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं—

२५०१—२०५०=४५१ वर्ष विक्रमपूर्व शंकराचार्य का जन्म।

२५०१—१९९३=५०८ वर्ष ईसवीपूर्व शंकराचार्य का जन्म।

२४६९—२०५०=४१९ वर्ष विक्रमपूर्व देहत्याग।

२४६९—१९९३=४७६ वर्ष ईसवीपूर्व देहत्याग।

४. आदि शंकराचार्य के समकालीन जैन राजा सुधन्वा ने शंकराचार्य का शास्त्रार्थ जैन पण्डितों से कराया था। उस राजा का एक ताम्रपत्र मिला है। उस ताम्रपत्र का लेख द्वारिकापीठ के एक आचार्य ने 'विमर्श' नामक ग्रन्थ के २९वें पृष्ठ पर प्रकाशित किया है। उसमें लिखा है—

निखिलयोगिचक्रवर्त्ती श्रीमच्छङ्करभगवत्पादपद्मयोर्भ्रमरायमाणसुधन्वनो मम सोमवंशचूडामणियुधिष्ठिरपारम्पर्यपरिप्राप्तभारतवर्षस्याञ्जलिबद्धपूर्विकेयं राजन्यस्य विज्ञप्तिः...... ....युधिष्ठिरशके २६६३ आश्विन शुक्ल १५।

राजा सुधन्वा द्वारा प्रदत्त इस ताम्रपत्र में युधिष्ठिर संवत् २६६३ लिखा है। तदनुसार आज इस ताम्रपत्र को लिखे हुये ५१३२—२६६३= २४६९ वर्ष हो गये हैं। यही वर्ष आचार्य शंकर के देहत्याग का वर्ष था। अर्थात् आचार्य के ३२ वर्ष के वयस् में उनके जीवित रहते हुये मृत्यु से एक मास पूर्व यह ताम्रपत्र लिखा गया था।

५. एक अन्य ताम्रपत्र संस्कृतचन्द्रिका (कोल्हापुर) के खण्ड १४, संख्या २-३ में प्रकाशित हुआ था। उसके अनुसार गुजरात के महाराज सर्वजिद्वर्मा ने द्वारिका स्थित शारदापीठ के प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वराचार्य

(पूर्वनाम—मण्डनमिश्र) से लेकर २९वें आचार्य श्री नृसिंहाश्रम तक सभी आचार्यों के नाम समय आदि का विवरण लिखवाया है। इसमें प्रथम आचार्य का समय २६४९ युधिष्ठिरसंवत् दिया है। इसके अनुसार भी प्रथम आचार्य ५१३२—२६४९=२४८३ वर्ष पूर्व विद्यमान थे। यह समय भी ४३३ वर्ष विक्रमपूर्व और ४९० वर्ष ईसापूर्व सिद्ध होता है।

६. शङ्कराचार्य के मठों में गुरु के देहत्याग पर श्रद्धाञ्जलि के रूप में पूर्व गुरुओं के स्मरण हेतु श्लोक पाठ किया जाता है। उन श्लोकों में पूर्वाचार्यों के स्वर्गवास सम्बन्धी तिथि, मास, वर्ष, स्थान आदि का निर्देश होता है। ये श्लोक सर्वज्ञसदाशिवकृत "पुण्यश्लोकमञ्जरी", आत्मबोध द्वारा रचित "गुरुरत्नमालिका" तथा उसकी टीका "सुषमा" में उपलब्ध हैं। प्रत्येक गुरु के स्वर्गारोहण पर उसी सम्बन्धी श्लोक बनाकर संग्रह करते जाते हैं। इसी प्रकार यह परम्परा चली आ रही है। उनमें एक श्लोक इस प्रकार है—

तिष्ये प्रयात्यनलशेवधिबाणनेत्रे,
ये नन्दने दिनमणावुदगध्वभाजि।
रात्रोदितेरुडुविनिर्गतमंगलग्ने—
त्याहूतवान् शिवगुरुः स च शंकरेति॥

अर्थ—अनल=अग्नि=३, शेवधि=निधि=९, बाण=कामबाण=५, नेत्र=२ अर्थात् ३९५२। 'अंकानां वामतोगतिः" इस नियम से अंक उलटे विपरीत लिखे जाते हैं, अतः इनको सीधा लिखने पर २५९३ कलिसंवत् बना। आज ५०९४ कलिसंवत् है। ५०९४—२५९३=२५०१ वर्ष पूर्व शंकराचार्य का जन्म प्रतिपादित किया है। तदनुसार—

२५०१—२०५०=४५१ वर्ष विक्रमपूर्व और २५०१—१९९३=५०८ वर्ष ईसापूर्व यह तिथि निश्चित होती है।

७. दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् श्री कुमारिलभट्ट श्री शंकराचार्य के

समकालीन थे । जैन मतावलम्बी लोग कुमारिलभट्ट को अपना घोर विरोधी मानते थे । जैनग्रन्थ जिनविजय में लिखा है ।

ऋषिर्वारस्तथा पूर्णं मर्त्याक्षौ वाममेलनात् ।
एकीकृत्य लभेताङ्कः क्रोधीस्यात्तत्र वत्सरः ।।

भट्टाचार्यस्य कुमारस्य कर्मकाण्डैकवादिनः ।
ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन् वर्षे यौधिष्ठिरे शके ।।

जैन लोग युधिष्ठिरसंवत् को ४६८ कलिसंवत् से प्रारम्भ हुआ मानते हैं । इनका आधार कल्हणकृत राजतरंगिणी ग्रन्थ है । तदनुसार कलिसंवत् ५०९४–४६८=४६२६ युधिष्ठिरसंवत् जैनों के मतानुसार आज है । श्लोकार्थ–ऋषि=७, वार ७, पूर्ण (शून्य) =०, मर्त्याक्षौ=२ ७७०२ इस संख्या को 'वामतो गति' के अनुसार पलटकर लिखने से २०७७ युधिष्ठिर संवत् आया । आज के जैन युधिष्ठिरसंवत् ४६२६ से २०७७ घटाने पर आज से २५४९ वर्ष पूर्व कुमारिलभट्ट का जन्म सिद्ध हुआ ।

शंकराचार्य के प्रथमजीवनी लेखक और सहपाठी श्री चित्सुखाचार्य ने बृहत् शंकर दिग्विजय में लिखा है कि श्री कुमारिलभट्ट श्री शंकराचार्य से ४८ वर्ष बड़े थे । इस प्रकार कुमारिलभट्ट के जन्म २५४९ वर्ष पूर्व से ४८ घटाने पर २५०१ वर्ष पूर्व आचार्य शंकर का जन्म प्रमाणित होता है । यही समय ४५१ वर्ष विक्रमपूर्व और ५०८ वर्ष ईसापूर्व सिद्ध होता है । कुमारिलभट्ट भी ४९९ वर्ष विक्रम पूर्व और ५५६ वर्ष ईसापूर्व उत्पन्न हुये थे, यह निश्चित है । जैनों का कलियुग भी ४६२६-२०५०=२५७६ वर्ष विक्रमपूर्व और ४६२६-१९९३=२६३३ वर्ष ईसापूर्व प्रचलित हुआ था ।

८. आदि शंकराचार्य के देहावसान के विषय में जैन ग्रन्थ जिन विजय में इस प्रकार लिखा है—

ऋषिर्बाणस्तथा भूमिर्मर्त्याक्षौ वाममेलनात् ।
एकत्वेन लभेताङ्कस्ताम्राक्षस्तत्र वत्सरः ।।

ऋषि=७, बाण=५, भूमि=१, मत्स्याक्षौ=२। ७५१२ इस संख्या को विपरीत करने पर २१५७ जैनमतों का युधिष्ठिरसंवत् आया। जैनों के युधिष्ठिरसंवत् ४६२६ से २१५७ न्यून करने पर २४६९ युधिष्ठिरसंवत् आया। २४६९–२०५०=४१९ वर्ष विक्रमपूर्व और २४६९–१९९३=४७६ वर्ष ईसापूर्व में आचार्य शंकर का देहावसान प्रमाणित होता है। अर्थात् आज से २४६९ वर्ष पूर्व आचार्य शंकर दिवंगत हुये थे।

९. श्री शंकराचार्य के सहाध्यायी श्री चित्सुखाचार्य ने इनके जन्म विषय में अपने ग्रन्थ बृहत् शंकरविजय में लिखा है—

षड्विंशके शतके श्रीमद् युधिष्ठिरशकस्य वै।
एकत्रिंशेऽथ वर्षेतु हायने नन्दने शुभे॥
.... ।
प्रासूत तन्वंसाध्वी गिरिजेव षडाननम्॥

यहां युधिष्ठिर शक (संवत्) के २६वें शतक=२६× १००=२६०० वर्षों से ३१ वर्ष अधिक अर्थात् २६३१ युधिष्ठिरसंवत् में आचार्यशंकर का जन्म हुआ था। आज ५१३२ युधिष्ठिरसंवत् है। ५१३२-२६३१= २५०१ वर्ष पूर्व आचार्यशंकर उत्पन्न हुये थे। २५०१ २०५०=४५१ वर्ष विक्रमपूर्व और २५०१-१९९३= ५०८ वर्ष ईसापूर्व जन्म सिद्ध होता है।

१०. आन्ध्रवंशीय प्रसिद्ध शासक हाल और शंकराचार्य समकालिक थे। गुरुरत्नमालिका में 'अपि हालपालित पालितम्' लिखकर इसकी पुष्टि की है। हालराजा ने कलि संवत् २६०८ से २६१३ तक राज्य किया था। उसी समय कश्मीर में गोनन्दवंशीय 'नर' राजा का शासन चल रहा था। यह राजतरंगिणी से सिद्ध है। आज के ५०९४ कलियुग से २६०८ घटाने पर ज्ञात हुआ कि २४८६ वर्ष पूर्व श्री शंकराचार्य इस भूतल पर विद्यमान थे। तद-नुसार २४८६-२०५०=४३६ वर्ष विक्रमपूर्व तथा २४८६ १९९३=४९३वर्ष ईसापूर्व में राजा हाल तथा आचार्य शंकर की विद्यमानता सिद्ध होती है।

इस उपर्युक्त विवरण का साक्ष्य द्वारिका की शारदा पीठ, जगन्नाथपुरी की गोवर्द्धनपीठ और कांची की कामकोटिपीठ की गुरुपरम्परा से चली आ रही वंशावलियों में स्पष्ट मिलता है। इनको असत्य कहना अप्रामाणिक और सत्य से मुख मोड़ना है। यह कभी नहीं हो सकता कि पुराकाल में सभी ने सम्मति करके किसी असत्य को सत्य का पुट देने की प्रतिज्ञा की हो और उसका प्रचार किया हो। पुरी की गोवर्द्धनपीठ पर गृहस्थाश्रम के अनन्तर संन्यासी होकर शंकराचार्य का पद मिलता है जबकि द्वारिका की शारदापीठ और कांची की कामकोटि पीठ पर ब्रह्मचर्य से ही सीधी संन्यस्तदीक्षा देकर शंकरा चार्य बनाया जाता है। यही कारण है कि इन दोनों मठों के आचार्य प्राय: दीर्घजीवी हुये हैं तथा जगन्नाथपुरी की गोवर्द्धनपीठ के महानुभाव शंकराचार्य के पद पर अल्पकाल तक ही रह पाये हैं। संयम, ब्रह्मचर्य और तपस्या के करने और न करने का ही यह परिणाम है।

आचार्य उदयवीरजी शास्त्री ने वेदान्तदर्शन के इतिहास में इन आचार्यों की नामावली दी है। तदनुसार शारदापीठ के ७७ आचार्य, कामकोटिपीठ के ६८ आचार्य और गोवर्द्धनपीठ के १४४ आचार्य सन् १९७० तक हो चुके हैं। ज्योतिर्मठ के आचार्यों की परम्परा विच्छिन्न हो जाने से विक्रम संवत् १५०० से ही इनकी वंशावली उपलब्ध होती है। इससे पहले की नामावली लुप्त है। इसी प्रकार शृंगेरीमठ की आचार्यपरम्परा भी लुप्त होने के कारण केवल ३७ आचार्यों के नाम इस समय ज्ञात हैं। कालक्रम में भूल कहां हुई—

१. इतने प्रमाण उपलब्ध होते हुये भी क्या कारण है कि वर्तमान इतिहासज्ञ आदिशंकराचार्य को ७८८ ईसवी ८२० ईसवी तक विद्यमान होना मानते हैं। यह भूल हुई है शंकराचार्यों के नाम और उपाधियों की साम्यता के कारण। जिसको वर्तमान इतिहासकार आदिशंकराचार्य मानते आ रहे हैं वे वस्तुत: कामकोटिपीठ के ३८वें आचार्य श्री अभिनवशंकरजी थे। ये ईसवी सन् ७८७ से ८४० तक विद्यमान थे। वे चिदम्बरम्वासी श्री विश्वजी

नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इन्होंने कश्मीर के पण्डित वाक्पतिभट्ट को शास्त्रार्थ में पराजित किया और तीसवर्ष तक मठ के आचार्य पद पर रहने के पश्चात् कैलास चले गये। वहां आत्रेय पर्वत की दत्तात्रेय गुफा में शरीर त्याग कर दिया। यही गुफा कालान्तर में आदिशंकरा चार्य की गुफा कहलाने लगी। जबकि आदि शंकराचार्य ने कांची में ही शरीर त्याग किया था।

२. प्राचीन बृहत्तरभारत के दक्षिणपूर्वी भाग कम्बोडिया में एक शिलालेख मिला है। उसमें भगवान् शंकर के शिष्य शिवसोम का वर्णन है। वहां लिखा है—

येनाधीतानि शास्त्राणि भगवच्छङ्कराह्वयात्।
निश्शेषसूरिमूर्द्धालिमालालीढाङ्घ्रिपङ्कजम्॥

इस श्लोक में शिवसोम के द्वारा भगवान् शंकर से विद्याग्रहण की चर्चा है। यह शिवसोम राजा इन्द्रवर्मन् का गुरु था। राजा इन्द्रवर्मन् का शासन ८७८ ईसवी सन् से प्रारम्भ होता है, उस समय भारत में कामकोटि की पीठ पर ३८वें आचार्य अभिनवशंकर विराजमान थे। अतः उपर्युक्त श्लोक में जो विद्वान् आदिशंकराचार्य का वर्णन मानते हैं, उन्हें अपने कथन पर पुनर्विचार करना चाहिये। माधव द्वारा रचित शंकरविजय नामक पुस्तक में प्रथम और ३८वें दोनों आचार्यों की जीवनियों को मिलाजुलाकर लिख दिया है। दोनों के जीवन की पर्याप्त घटनायें समान होने से ऐसा हुआ है।

श्री सदाशिवब्रह्मेन्द्र कृत गुरुरत्नमालिका की सुषमा नामक टीका में श्री आत्मबोध ने १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही इस भावी भूल की ओर ध्यान दिला दिया था। वे लिखते हैं—

………इत्यादिना मूलकारे पौषप्रपञ्चायिष्यमाणेभ्यो नवशंकरेन्द्रादिभ्योऽस्य भेदाग्रहणजन्मदिग्विजय निर्माण प्रमुखेषु स्थलेषु तयोर्द्वयोरपि वृत्तजातमेकतः सकलीकृत्य निवबन्धुः। अस्य किमपि किमप्यर्वाचीना अविदितभुवन वृत्तान्ताः कतिपये कवय इत्यवगन्तव्यम्।

इसके अनुसार दोनों शंकराचार्यों की जीवनी की समान घटनाओं के कारण एकाकार किया जाने का सन्देह व्यक्त किया जा सकता है, यह आशंका जताई है। जब आदिशंकराचार्य के जन्मस्थान कालदी की जानकारी नहीं हुई थी, तब तक उनको चिदम्बरम् में ही उत्पन्न हुआ माना जाता था। वास्तव में चिदम्बरम् तो ३८वेंआचार्य अभिनवशंकर का जन्मस्थान था। आदिशंकराचार्य की भांति अभिनवशंकर भी कश्मीर गये थे और वहां के सर्वज्ञपीठ की कुछ काल तक अध्यक्षता भी की थी।

इसी प्रकार नाम-गुण की साम्यताओं के कारण अभिनवशंकर द्वारा रचित आनन्दलहरी और सौन्दर्यलहरी नामक ग्रन्थ भी आदिशंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गये अथवा कर दिये गये।

डॉ. विन्सेंट स्मिथ के अनुसार स्वामी शंकराचार्य गौतम बुद्ध के देहावसान के ६० वर्ष पश्चात् उत्पन्न हुये थे। ये गौतम बुद्ध का निर्वाण ५५० ई. पूर्व मानते हैं। तदनुसार शंकराचार्य ४९० ईसवी पूर्व सिद्ध होते हैं। यद्यपि प्राचीन भारतीय मान्यता के अनुसार महात्मा बुद्ध का यह समय नहीं है जो डॉ. विन्सेंट स्मिथ ने लिखा है, पुनरपि आदिशंकराचार्य के काल के विषय में इनका कथन सत्य ही है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि आदि शंकराचार्य का जन्म २६३१ युधिष्ठिरसंवत, २५९३ कलिसंवत्, ४५१ वर्ष विक्रमपूर्व और ५०८ वर्ष ईसापूर्व हुआ था। वे कुल ३२ वर्ष तक जीवित रहे। उनका स्वर्गवास २६६३ युधिष्ठिरसंवत् २६२५ कलिसंवत्, ४१९ वर्ष विक्रमपूर्व और ४७७ वर्ष ईसापूर्व में हुआ था।

कालक्रम के निर्धारण में भेद का प्रमुख कारण है यह कि हम पर-मुखापेक्षी हो गये हैं। हमारा प्राचीन भारतीय संस्कृत वाङ्मय किसी विषय में क्या कहता है, इसे न देखकर, हम बाहर की ओर झांकते हैं कि यूनानी लेखक और यात्री क्या कहते हैं, चीनी अथवा मुस्लिम यात्रियों का

क्या कथन है, अथवा विदेशी आंग्ल इतिहासकारों ने क्या लिखा है। बहुत से विदेशी यात्रियों ने तो एक स्थान पर बैठकर ही सुनी-सुनाई बातें लिख दी हैं उनमें बहुत-सा अनर्गल भी लिखा है। किसी यात्री ने यात्रा करते हुये भी एक मतविशेष का ही वर्णन किया है, जबकि देश में अन्य मतावलम्बी विद्वान् और राजा भी थे। इसलिये इतिहास के अन्वेषण के लिये अति सावधानी से गहरायी तक जांच करनी चाहिये। इसलिये १००-१५० वर्षों के भीतर पाश्चात्यदेशीय इतिहासकारों द्वारा लिये महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक निर्णयों की परीक्षा की दृष्टि से पुनरीक्षण करना अत्यावश्यक है। इसी कारण यह प्रयास किया गया है।

—:**:—

महाभारत युद्ध कब हुआ एवं अन्य रचनाएं

लेखक : विरजानन्द दैवकरणि

प्रथम संस्करण : १९९५

मूल्य : ५) रु.

प्रकाशक : वैदिक पुस्तकालय, केसरगंज, अजमेर

मुद्रक : वैदिक यन्त्रालय, अजमेर